डॉ. रामविलास शर्मा

Dr. Ram Vilas Sharma

डॉ. रामविलास शर्मा, जिन्हें साहित्य अकादेमी आज अपने सर्वोच्च सम्मान, महत्तर सदस्यता, से विभूषित कर रही है, हिन्दी के वरिष्ठ समालोचक एवं लेखक हैं। आपने हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान किया है और आज भी आपकी लेखनी इस दिशा में सक्रिय है।

डॉ. रामविलास शर्मा हिन्दी साहित्य के ही नहीं, सम्पूर्ण भारतीय साहित्य की व्याख्या के लिए महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट सम्मान के अधिकारी हैं। आपके यशस्वी, असाधारण और तप:पूत व्यक्तित्व के कई आयाम हैं, जो एक-दूसरे के पूरक हैं। कवि, लेखक, प्राध्यापक एवं आलोचक के रूप में आपका कृती व्यक्तित्व—साहित्य और लोक को समर्पित साधना, अजेय संकल्प और अदम्य संघर्ष का ही नामान्तर है।

डॉ. रामविलास शर्मा का जन्म ऊँचगाँव-सानी (ज़िला उन्नाव, उ.प्र.) में 10 अक्तूबर 1912 को हुआ। डॉ. शर्मा ने अपनी आरंभिक पढ़ाई झाँसी की सरस्वती पाठशाला में शुरू की थी। तब स्वाधीनता आन्दोलन का दौर था और पढ़ाई के साथ आप कलाई पंजा लड़ाना, मूर्तियाँ तथा चित्र बनाना भी सीख गये थे। बाद में मैकडॅनल हाईस्कूल से स्कूली पढ़ाई पूरी कर आपने इंटर में दाखिला लिया और छात्रवृत्ति प्राप्त की। आपने 1934 में लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए किया। 1938 में पी-एच.डी. करने का बाद वहीं अंग्रेज़ी में अध्यापन किया। उसके बाद बलवन्त राजपूत कॉलेज, आगरा में 1943 से 1971 तक अंग्रेज़ी विभाग के अध्यक्ष रहे और बाद में के.एम. मुंशी हिन्दी विद्यापीठ, आगरा के निदेशक पद पर (1971-74) कार्यरत रहे। आप नवंबर 1981 से दिल्ली में रह रहे हैं।

डॉ. शर्मा के लेखन की शुरुआत कविता के साथ हुई थी। वर्ष 1934 में *चाँद* के लिए आलोचनात्मक लेख लिखने वाली आपकी काल-जयी लेखनी साठ सालों से भी अधिक समय से सक्रिय बनी हुई है। अपने प्रारंभिक रचना-काल में आपने *चार दिन* (उपन्यास) और *पाप के पुजारी* नाटक भी लिखा।

डॉ. शर्मा 1949 से 1953 तक अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के महासचिव रहे और दो वर्षों तक (1958-59) *समालोचक* पत्रिका का सम्पादन भी किया। *तारसप्तक* (1944) जैसे महत्त्वपूर्ण काव्य-आयोजन में एक प्रतिष्ठित कवि के रूप में सम्मिलित डॉ. शर्मा ने समय-समय पर कविताएँ भी लिखी हैं जो आपके कविता-संग्रहों *रूपतरंग*, *सदियों के सोये जाग उठे* तथा *प्रतिनिधि कविताएँ* में संकलित हैं।

भारत में मार्क्सवादी चिन्तन परम्परा और समालोचना के समर्थ प्रवक्ता डॉ. शर्मा भारतीय साहित्य एवं संस्कृति की चर्चा करते हुए अतीत का बखान या गौरव का गुणगान ही करते नहीं रह जाते बल्कि अपनी

Dr. Ramvilas Sharma on whom the Sahitya Akademi is bestowing its highest honour — the Fellowship — today, is a senior Hindi writer and critic. He has made significant contribution in the area of literary criticism in Hindi and is even now actively engaged in writing in this genre.

Dr. Ramvilas Sharma deserves an important place of honour not only in Hindi literature but the entire gamut of Indian literature for his critique of the same. His illustrious and outstanding personality has many facets which are complementary. Poet, writer, teacher, critic — his creative personality, dedicated to literature and people, is eponymous with sheer dedication, firm resolve and industry.

Dr. Ramvilas Sharma was born on October 10, 1912 in Unchagaon-Sani (District Unnao, Uttar Pradesh). He had his early education at the Saraswati Pathshala of Jhansi. It was the era of the struggle for freedom. He learnt arm-wrestling, sculpture and painting besides the prescribed curriculum. He completed school from McDonnel High School and got a scholarship after joining the Intermediate. He did MA in English Literature in 1934 from Lucknow University. After earning a Ph.D. in 1938 he started teaching English in the same university. From 1943 to 1971 he was the head of the English Department of Balwant Rajput College, Agra. He was later the Director of K.M. Munshi Hindi Vidyapeeth, Agra from 1971 to 1974. He has been living in Delhi since 1981.

The beginning of Dr. Sharma's literary odyssey came with poetry. His critical writings which began with articles in the periodical *Chand* in 1934 have continued for over six decades. During the early years of his writing career, he has written a novel *Char Din* and a play *Paap Ke Pujari*.

Dr. Sharma was General Secretary of the All India Progressive Writers' Association from 1949 to 1953 and edited the journal *Samalochak* for two years (1958-59). Having been included as an established poet in the prestigious poetic anthology, *Taar Saptak* (1944), Dr. Sharma has written poems from time to time, which are included in his collections *Roop Tarang*, *Sadiyon Ke Soye Jaag Utthe* and *Pratinidhi Kavitayen*.

A gifted articulator of Marxist thought and principles of criticism, Dr. Sharma, through his well-reasoned

तर्कसम्मत व्याख्या और तथ्याश्रित इतिहास-दृष्टि से यह बताते रहे हैं कि साहित्य की यात्रा में हम कहाँ-कहाँ किन प्रश्नों और प्रस्थानों से कतराते रहे और हमसे कहाँ और कब चूक हुई।

डॉ. शर्मा का मानना है कि जिन परिस्थितियों में भारतीय साहित्य का सृजन और अध्ययन हो रहा है – उनका गहरा संबंध विश्व पूँजीवाद से है। पूँजी के केन्द्रीकरण के साथ ही विश्व में बहुत बड़े पैमाने पर बुनियादपरस्ती (धार्मिक अंधविश्वासों) का संगठित प्रसार किया गया है। ऐसी स्थिति में अपनी जातीय पहचान और जातीय संस्कृति की रक्षा हर बुद्धिजीवी का कर्त्तव्य है। यहाँ वे बोली और भाषा के परस्पर संबंधों की व्याख्या भी अपने कई ग्रंथों और आलेखों में कर चुके हैं। वे इस बात पर ज़ोर देते रहे है कि जातियों को विभाजित कर उनका शोषण करना साम्राज्यवाद की गहरी लेकिन सुपरिचित चाल है जिसने हिन्दी जाति को विभाजित किया है। आपका मानना है कि जहाँ कहीं भी साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष चलाये गये हैं, वहाँ जातीय एकता और जातीय संस्कृति की रक्षा के लिए भी संघर्ष किया गया है। भारत जब तक आर्थिक और सांस्कृतिक परनिर्भरता से मुक्त नहीं होता, तब तक सही और समुचित ढंग से भारतीय साहित्य का निर्माण और विकास नहीं हो सकता और इसके लिए बड़े पैमाने पर स्वदेशी आन्दोलन की आवश्यकता है। डॉ. शर्मा ने इस आन्दोलन की व्यावहारिक रूपरेखा भी बनाई है जिनमें न केवल सरकारी, ग़ैरसरकारी संस्थाओं, संसाधनों, उपक्रमों, पूँजीवादी प्रतिष्ठानों की, बल्कि साहित्य अकादेमी समेत विभिन्न विश्वविद्यालयों, देवस्थानों, आकाशवाणी, दूरदर्शन, आरक्षण, निर्वाचन, जनपदों के पुनर्गठन, हिन्दी क्षेत्र में साक्षरता अभियान, ग़रीबों को नि:शुल्क शिक्षा, मातृभाषा में शिक्षा, उर्दू की पुरानी कृतियों का देवनागरी में लिप्यंतरण तथा सार्वजनिक छुट्टियों की संख्या पचास फ़ीसदी कम करने का प्रस्ताव है। इन प्रयत्नों के साथ ही वे प्रत्येक पुनर्गठित जनपद को प्रशासन की बुनियादी इकाई बनाने पर भी ज़ोर देते हैं।

संस्कृति चिन्तन के क्षेत्र में आपकी कृति *इतिहास दर्शन* भारतीय संस्कृति और इससे जुड़ी ज्ञात-अज्ञात धाराओं और अंत:सलिलाओं को जानने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयत्न है। दरअसल भारत का प्राचीन इतिहास जितना समृद्ध है, उतना ही संश्लिष्ट और जटिल भी। इतिहास के प्रति अपनी उदासीनता के चलते हमारे लेखक उन भ्रामक धारणाओं एवं व्याख्याओं को भी तद्वत स्वीकारते रहने के आदी हो गये हैं जो औपनिवेशिक दौर में अंग्रेज़ों द्वारा हमें दी गई हैं। भारत और यूनान के इतिहास के कुछ सूत्रों की पड़ताल और दो महान संस्कृतियों से जुड़े कतिपय प्रश्नों को सुलझाने का जैसा प्रयत्न इस ग्रंथ में हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। यह कृति भारत और यूनानी समाज की दार्शनिक परम्पराओं के साथ उन अन्तर्विरोधों की न केवल जाँच करती है बल्कि कई बिन्दुओं पर पुनर्विचार के लिए विद्वानों को बाध्य भी करती है।

डॉ. शर्मा ने जहाँ कबीर, तुलसी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रेमचन्द और निराला के माध्यम के हिन्दी के जातीय साहित्य का मूल्यांकन किया, वहीं अन्धपरम्परा और रूढ़ियों के बंधन को नकार कर एक स्वस्थ, उदार और तटस्थ दृष्टि से इसे पढ़ने की दृष्टि प्रदान की। डॉ. शर्मा ने अपनी आलोचना के उपस्कर मार्क्सवाद से प्राप्त किये, लेकिन उनके प्रश्न, प्रसंग, प्रस्थान और प्रतिमान भारतीय परिवेश और संदर्भों से पुष्ट और समृद्ध हैं। यही कारण है कि आपको आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के बाद हिन्दी के शीर्षस्थ समालोचक का सम्मान प्राप्त है।

expositions and a historical overview informed by facts, analyses the instances when we have been remiss or have avoided questions and take-offs in the journey of literature. Thus he contributes far more to an understanding of Indian literature and culture than a mere recounting of past glories.

Dr. Sharma believes that the circumstances in which Indian literature is being created and studied have a profound relationship with world capitalism. Alongside centralisation of capital, the world witnessed an organised spread of religious fundamentalism on a very large scale. In such a situation, the assertion of one's ethnicity and the protection of ethnic culture is the responsibility of every intellectual. He has expounded on the relationship of the spoken word and language in many of his books and articles. He has been emphasizing that ethnic division and the resultant exploitation constitute the well-known strategy of imperialism, which has also divided Hindi ethnicity. He believes that the struggle for ethnic unity and protection of ethnic culture have been present wherever a struggle against imperialism has been resorted to. As long as India is not free of economic and cultural dependence on others, the development of Indian literature is not possible in a proper and holistic manner. For this, a swadeshi struggle is needed on a large scale. Dr. Sharma has prepared a blueprint for this struggle which covers not only government departments but also non-government entities, undertakings, capitalist institutions, different universities and other institutions of learning including Sahitya Akademi, temples, Akashvani, Doordarshan etc. It envisages reconstitution of districts, reservation procedure and election norms, literacy drive in Hindi areas, free education for the poor, instruction through mother tongue, transcription of old Urdu books into Devanagari and reduction of public holidays by fifty percent. He also stresses the need to make the reconstituted district the basic unit of administration.

His work *Itihas Darshan* is a significant attempt at understanding the known and unfamiliar currents and undercurrents of Indian culture. India's past, though rich, is full of complexity and difficulties. Our writers have got used to accepting without a demur the misleading theses and analyses, due to an apathy towards history, which the British have handed down to us during colonial times. The attempt in this book, to answer numerous questions connected with India and Greece and to examine some historical truths of these two great cultures, is difficult to find in works by any other author. This work examines the philosophical traditions of India and Greece as well as their contradictions and it forces scholars to think again on several points.

While Dr. Sharma evaluated ethnic Hindi literature through Kabir, Tulsi, Bharatendu Harishchandra, Premchand and Nirala, he also provided the vision to negate obscurantist and feudal outlooks and approach scholarship in a healthy, liberal and neutral manner. Dr. Sharma gets the tools of his literary criticism from Marxism

हिन्दी भाषा के विविध साधना क्षेत्रों में डॉ. शर्मा ने जो विलक्षण कार्य किया है, वह अभूतपूर्व एवं ऐतिहासिक महत्त्व का है। इसके पीछे आपके गहन अध्ययन एवं सुदीर्घ जीवनानुभवों से समृद्ध संसार उपस्थित है।

तीन खण्डों में प्रकाशित आपका गौरव ग्रंथ *निराला की साहित्य साधना* (1967-76) हिन्दी के शिखर कवि निराला के जीवन-संघर्ष, भाव-बोध, कवि कर्म – छायावादी से लेकर प्रगतिशील रचनाधर्मिता – को युग-बोध की कसौटी पर कसने का ऐतिहासिक एवं स्पृहणीय उपक्रम है। इस समालोचना ग्रंथ में कविकर्म के समुचित मूल्यांकन की दिशा में जिन प्रविधियों और प्रयुक्तियों का उपयोग हुआ, उनसे हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में जहाँ नये आलोचकों को दिशा निर्देश मिला, वहीं हिन्दी आलोचना का क्षितिज भी विस्तृत हुआ। डॉ. शर्मा अक्सर इस बात का उल्लेख करते हैं कि कवि निराला के सम्पर्क में आकर उनके साहित्य संस्कार तो पल्लवित हुए ही, जीवन और जनपद को जानने तथा लोक तथा शास्त्र को समझने की दृष्टि भी विकसित हुई। वर्ष 1970 में इस ग्रंथ के लिए आपको साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

भारतीय साहित्य के अलावा भारतीय कला विशेषकर संगीत/स्थापत्य संस्कृति दर्शन, चिन्तन, विज्ञान, भाषाविज्ञान और मनीषा को प्रभावित करनेवाले विशिष्ट इतिहास पुरुषों पर डॉ. शर्मा ने विस्तार से विचार किया है। ऋग्वेद तथा ऋग्वेदकालीन भारतीय समाज और संस्कृति, हड़प्पा तथा तत्कालीन इतिहास और पुरातत्त्व के परम्परागत क्षेत्रों की अद्यतन जानकारी के लिए आपकी कृतियाँ *पश्चिम एशिया और ऋग्वेद* तथा *इतिहास दर्शन* का पाठकों के लिए स्थायी महत्त्व बना रहेगा। इसी तरह शंकराचार्य, कबीर, राजा राममोहन राय, विलियम जोन्स, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विवेकानन्द, महात्मा गाँधी, बी.आर. अम्बेडकर जैसी भारतीय मनीषा पर भी डॉ. शर्मा का कार्य नयी सूचनाओं से पुष्ट और प्रामाणिक है। अपने एक अन्य ग्रंथ *भारतीय साहित्य की भूमिका* (1966) में डॉ. शर्मा ने ऋग्वेद से लेकर स्वदेशी आंदोलन और जातीय संस्कृति के विवेचन के अंतर्गत हिन्दी जाति के पुनर्गठन पर विस्तार से चर्चा की है। इसी तरह आपकी आत्मकथा *अपनी धरती अपने लोग* (तीन खंडों में, 1996) हमारे समय के एक महान अध्येता के जीवन-व्यवहार और समर्पित लेखन कर्म ही नहीं, उसके गहरे सरोकार से भी परिचित कराती है। उक्त ग्रंथ में भारतीय साहित्य के सामाजिक, सामासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए डॉ. शर्मा ने उन तर्कों और निष्कर्षों को ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर खण्डित किया है जो विश्व पाठ्यक्रमों या बुद्धिजीवी वर्ग की पश्चिमी अवधारणाओं पर आधारित है। डॉ. शर्मा हमेशा इस प्रयास में रहे हैं कि सामंती सोच के भारतीयों और पश्चिमी संसार के 'वैज्ञानिक' विचारकों से हटकर ऐसी राह बनायी जा सके जिस पर चलते हुए भारतीय साहित्य और संस्कृति के विभिन्न पक्षों का वस्तुगत विवेचन किया जा सके। तथ्यों के आलोक में और अपनी स्थापनाओं से ही भारत का सांस्कृतिक इतिहास लिखने में सहायता मिलेगी, तभी वह प्रामाणिक और विश्वसनीय होगा।

भारतीय परम्परा के मूल्यांकन के प्रतीक पुरुष डॉ. रामविलास शर्मा अब स्वयं एक जीवित परम्परा बन गये हैं। आपने हिन्दी महाजातीय परम्परा और जातीय भाषा हिन्दी का सुसंगत और वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन किया है — यह अपने आप में एक नयी साहित्य-दृष्टि और उपलब्धि है। इसे आप उदार समाजवादी प्रणाली से परिपुष्ट करते हैं। आपके अनुसार, "संसार का कोई भी देश बहुजातीय राष्ट्र की हैसियत से, भारत का मुक़ाबला नहीं कर

but his queries, dilations, take offs and paradigms are modelled on and enriched by the Indian context. This is why he has the honour of being the topmost literary critic in Hindi after Acharya Ramchandra Shukla.

The outstanding work that Dr. Sharma has done in different areas of Hindi language is unprecedented and historic. It is informed by his deep study and rich and varied experiences of life.

His magnum opus *Nirala Ki Sahitya Sadhana* (1967-76) is a historic undertake to understand the life, aesthetic and creative output of the pre-eminent Hindi poet Nirala from his 'Chhayavad' period to his progressive outpourings. The terms and definitions used in this book of literary criticism to evaluate the totality of the poet's ouvre has provided new vistas for later critics and extended the horizon of Hindi literary criticism. Dr. Sharma often says that Nirala's company has helped him develop the vision to understand life and the people, folk and classical literature, besides enriching his literary worldview. He won the Sahitya Akademi Award for this book in 1970.

Besides Indian literature, Dr. Sharma has contemplated in detail over Indian arts particularly music and architecture, culture, philosophy, science, linguistics and historical personages who have influenced the personality of India. His books *Paschim Asia aur Rigveda* and *Itihas Darshan* are of permanent value for readers, for their deep understanding of Rigveda in Indian society and the culture of Rigvedic times, Harappa civilisation and contemporary historical and archaeological area. His work on personalities like Shankaracharya, Kabir, Raja Ram Mohan Roy, William Jones, Rabindranath Tagore, Vivekananda, Mahatma Gandhi and B.R.Ambedkar, is likewise informed by new as well as authentic facts. Another book of his *Bharatiya Sahitya Ki Bhumika* (1996) deals in detail with the renaissance of Hindi ethnicity in the light of an analysis of ethnic culture from Rigveda to Swadeshi movement. His autobiography *Apni Dharti Apne Log* (Three volumes, 1996) is an introduction to the deep concern of a great thinker for his times and his commitment to the act of writing. In this book Dr. Sharma, while dwelling on the composite—social, and cultural—background of literature, debunks the arguments and conclusions arrived at by university curricula or intellectual elites in the light of Western concepts. He does this on the basis of historical facts. Dr. Sharma has always espoused a way removed from the feudal Indian as well as the 'scientific' Western thinkers to understand and analyse the different aspects of Indian literature and culture. It is only in the light of facts and based on original premises that any authentic and credible attempt at an Indian cultural history becomes possible.

The symbol of an understanding of Indian tradition, Dr. Ramvilas Sharma has himself become a living tradition. He has made a well-reasoned evaluation of the Hindi ethnic tradition looking at Hindi as an ethnic language. This, by itself, constitutes a new literary vision and is a positive gain. He reinforces this vision through liberal socialist

सकता। यहाँ राष्ट्रीयता एक जाति द्वारा दूसरी जातियों पर राजनीतिक प्रभुत्व क़ायम करके स्थापित नहीं हुई। वह मुख्यत: संस्कृति और इतिहास की देन है। इस संस्कृति के निर्माण में इस देश के कवियों का सर्वोच्च स्थान है। इस देश की संस्कृति से *रामायण* और *महाभारत* को अलग कर दें तो भारतीय साहित्य की आंतरिक एकता टूट जायेगी। किसी भी बहुजातीय राष्ट्र के सामाजिक विकास में कवियों की ऐसी निर्णायक भूमिका नहीं रही, जैसी इस देश में व्यास और वाल्मीकि की है। इसलिए किसी भी देश के लिए साहित्य की परम्परा का मूल्यांकन उतना महत्त्वपूर्ण नहीं, जितना इस देश के लिए है।"

आपकी लेखनी वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, तुलसीदास, भारतेन्दु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द, निराला, मुक्तिबोध, राहुल सांकृत्यायन, केदार-नागार्जुन-त्रिलोचन और अमृतलाल नागर जैसे विशिष्ट रचनाकारों एवं साहित्यसेवियों का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन कर चुकी है। आपकी भारतीय साहित्य और हिन्दी जाति के साहित्य की सही और समुचित अवधारणाओं ने साहित्येतिहास लेखन को एक नया प्रस्थान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान किया है।

शर्मा जी प्रगतिवादी विचारधारा के अनन्य प्रवक्ता तथा साहित्य, समाज आदि विषयों के जागरूक निबन्ध लेखक भी हैं। आपके निबन्ध संग्रहों में *प्रेमचन्द* (1941), *भारतेन्दु युग* (1942), *संस्कृति और साहित्य* (1949), *प्रगति और परम्परा* (1953), *भाषा, साहित्य और संस्कृति* (1954), *प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ* (1955), *आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना* (1955), *लोक जीवन और साहित्य* (1955), *भाषा और समाज* (1961), *नयी कविता और अस्तित्ववाद* (1975), *महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण* (1977), *भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद* (दो खण्डों में, 1982) *निराला की साहित्य साधना* (तीन खण्डों में, 1967-76) आदि रचनाएँ पर्याप्त समादृत हैं। आधुनिक युग की पाश्चात्य चेतना से पूरी तरह परिचित और मार्क्सवादी विचारधारा के पोषक होने के कारण शर्मा जी प्रगति को उसी दृष्टि से आँकते हैं। *हिन्दी जाति का इतिहास* (1986) तथा *इतिहास दर्शन* (1995) जैसे ग्रंथों से भारतीय समाज के विकास और परिवर्तनों के बारे में आपके आकलन और मूल्यांकन से आपके गहन चिन्तन और मननशील व्यक्तित्व का पता चलता है। आप भारतीय इतिहास और संस्कृति की व्याख्या नये संदर्भों और सन्धानों के आलोक में करते रहे हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा हिन्दी प्रगितिशील आलोचना के आधार-स्तम्भ हैं और आपने साहित्य का समाजशास्त्र निर्मित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। हिन्दी का जातीय इतिहास लिखते हुए, आपने इसे लम्बे काल-प्रवाह के सन्दर्भ में देखा है। भारतेन्दु से लेकर नये हिन्दी काव्य तक आप एक क्रम देखते हैं, जिस पर अपने समय के सामाजिक प्रभाव कार्य करते रहे हैं।

भारतीय साहित्य एवं भाषा को आपके निबन्धों में प्रबल रूप से समर्थन मिलता है। व्यंग्यात्मक शैली से सीधे और प्रखर कटाक्ष करने में भी आपका चिन्तन उभर आता है। पूँजीपतियों तथा सामन्ती भावनाओं का खण्डन आपने अपने निबन्धों में किया है।

हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए साहित्य अकादेमी, डॉ. रामविलास शर्मा को अपने सर्वोच्च सम्मान, महत्तर सदस्यता, से विभूषित करती है।

canons. He says, "No other country of the world can match India as a multi-ethnic nation. Nationhood was not the result of one ethnic group establishing political suzerainty over others. It came about as a gift of culture and history. The poets of this country have the pride of place in fashioning this culture. If *Ramayana* and *Mahabharata* are removed from the culture of this country, the inner unity of Indian literature will collapse. No other multi-ethnic nation has witnessed such a decisive role of poets as played by Vyas and Valmiki in its social development. For no other country is an evaluation of the tradition of literature as important, as for ours."

He has made critical evaluation of the writings of Valmiki, Kalidas, Bhavabhuti, Tulsidas, Bharatendu, Mahavir Prasad Dwivedi, Ramchandra Shukla, Premchand, Nirala, Muktibodh, Rahul Sankrityayan, Kedar-Nagarjun-Trilochan and Amritlal Nagar. His compreshensive theses about Indian Literature and Hindi ethnic literature have given a new direction and scientific vision to the writing of literary history.

Dr. Ramvilas Sharma is an outstanidng spokeman of progressive ideology and a well-informed essayist on literature, society and other subjects. His essay collections include *Premchand* (1941), *Bharatendu Yug* (1942), *Sanskriti aur Sahitya* (1949), *Pragati aur Parampara* (1953), *Bhasha, Sahitya aur Sanskriti* (1954), *Pragatisheel Sahitya ki Samasyayen* (1955), *Acharya Ramachandra Shukla aur Hindi Alochana* (1955), *Lok Jivan aur Sahitya* (1955), *Bhasha aur Samaj* (1961), *Nayi Kavita aur Astitvavad* (1975), *Mahavir Prasad Dwivedi aur Hindi Nava Jagaran* (1977), *Bharat mein Angrezi Raj aur Marxvad* (Two volumes, 1982) and *Nirala Ki Sahitya Sadhana* (Three volumes, 1969, 72, 78). Although fully conversant with the western consciousness of modern times, he is a votary of the Marxist ideology and evaluates progress accordingly. Works like *Hindi Jati ka Itihas* (1986) and *Itihas Darshan* (1995) are pointers to his deep study and thoughtful personality inasmuch as evaluation and assessment of the development of Indian society and changes in mindset are concerned. He has been expounding on Indian history and culture in the light of novel contexts and research.

Dr. Sharma is a pillar of progressive literary criticism in Hindi and he has made important contributions towards building a sociology of literature. Writing on the ethnic history of Hindi, he has viewed it in the context of an extended time-frame. He sees a continuity, from Bharatendu to modern Hindi poetry, which is affected by social influences of their time.

His essays strongly endorse Indian literature and language. His thought surfaces even in direct, sharp and satirical broadsides. He has debunked capitalist and feudal thought in his essays.

For his significant contribution in the field of Hindi criticism, the Sahitya Akademi confers on Dr. Ramvilas Sharma its highest honour, the Fellowship.

स्वीकृति वक्तव्य

डॉ. रामविलास शर्मा

साहित्य अकादेमी ने मुझे अपनी महत्तर सदस्यता प्रदान की है, इसके लिए मैं उसे धन्यवाद देता हूँ।

भारत की भाषाओं और उनमें रचे हुए साहित्य के अध्ययन और उनकी उन्नति के लिए अकादेमी की स्थापना हुई थी। यह उद्देश्य महान है और उसकी सिद्धि के लिए अनेक यशस्वी साहित्यकारों ने प्रयास किया है। कितनी शताब्दियाँ देखी हैं इन भाषाओं ने : एक और शताब्दी समाप्त होने को है। संसार के साथ हम भी नयी शताब्दी और नयी सहस्राब्दी में प्रवेश करेंगे। सहस्राब्दियों की जीवंत भाषिक परंपरा से संबद्ध होने का गौरव संसार में केवल भारत को प्राप्त है। लोक, जीव, प्राण, जन, गण, धन, छन्द, पृथिवी, अग्नि, अन्न, वायु, समुद्र, सूर्य जैसे पचासों शब्द *ऋग्वेद* में प्रयुक्त हुए, हमारी भाषाओं में अब भी उनका व्यवहार होता है।

नदियों के मार्ग बदल गये। *ऋग्वेद* में सरस्वती—*सिन्धुभिः पिन्वमाना*—अनेक नदियों के जलग्रहण से उफनाती हुई बहती हैं। (6.52.6) वह अपनी शक्तिशाली लहरों से *अरुजत् सानु गिरिणां*—गिरिशिखरों को तोड़ देती थी (6.61.2) इस सरस्वती के तट पर वैदिक कवियों ने सूक्त रचे थे। काव्य से संबद्ध होने के कारण सरस्वती वाणी की देवी बनी। इसी नदी के तट पर भरत जन रहते थे जो ऐसे यशस्वी थे कि उनके नाम पर सारा देश भारत कहलाया। भरत जन से संबद्ध वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि कवियों ने *ऋग्वेद* के सूक्त रचे, इस कारण सरस्वती की तरह 'भारती' शब्द भी वाणी के लिए प्रयुक्त हुआ।

सरस्वती और सिन्धु नदियों के बीच का क्षेत्र हरा-भरा और अत्यंत उपजाऊ था, यहीं हड़प्पा सभ्यता का विकास हुआ। इस विशाल क्षेत्र में सुनियोजित अर्थतंत्र का विकास हुआ। दूसरी सहस्राब्दी ई.पू. में सरस्वती का मार्ग परिवर्तन हुआ। बहुत-सी उपजाऊ भूमि मरुस्थल बन गयी। नगर सभ्यता का ह्रास हुआ। भाषाओं और उनके साहित्य की धारा फिर भी प्रवाहित रही।

भारतीय परंपरा के अनुसार आदिकवि वाल्मीकि थे। व्याध ने नरपक्षी को मारा। मादा पक्षी ने आर्तनाद किया। उसे सुनकर कवि का मन शोक से भर गया। *शोकः श्लोकत्वमागतः*—शोक ही मानो परिवर्तित होकर श्लोक बन गया। यह श्लोक अनुष्टुप कहलाया। यह छंद ऋग्वेद में भी है। सरयू, गोमती, गंगा कोसल क्षेत्र की प्रसिद्ध नदियाँ, रामकथा से संबद्ध वसिष्ठ विश्वामित्र ऋषि ऋग्वेद में भी हैं। कोसल और कुरुप्रदेश का संबंध बहुत पुराना है। कुरुप्रदेश से महाभारत का संबंध प्रसिद्ध ही है। विशेष बात यह कि पुरोहितों ने जब शूद्रों के वेद पढ़ने पर रोक लगा दी, तब व्यास ने पाँचवाँ वेद *महाभारत* रचा। अपने पुत्र और शिष्यों को उन्होंने चारों वेद पढ़ाये और *महाभारतपञ्चमान*—पाँचवाँ वेद *महाभारत* पढ़ाया। (आदि पर्व 63.89) *नाट्यशास्त्र* में यह बात और भी स्पष्ट कही गयी है :

न वेदव्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु,
तस्मात् सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम् (1.12)

देवों ने ब्रह्मा से कहा—वेद शूद्र जातियों को सुनाये ही नहीं जाते, इसलिए आप सभी वर्णों के लिए पाँचवाँ वेद रचिए।

पाँचवें वेद की परंपरा बहुत पुरानी है। *छान्दोग्य उपनिषद्* में नारद ने सनत्कुमार से कहा—चारों वेदों के अतिरिक्त इतिहास-पुराणरूप पाँचवाँ वेद मैं जानता हूँ (7.1.2) ऋषियों को महाभारत सुनानेवाले सूतपुत्र उग्रश्रवा पौराणिक थे। *महाभारत* पुराण है, इतिहास भी है (आदि पर्व, 10, 17, 19)। शूद्र संभवतः मूल रूप में, किसी गण या क़बीले का नाम था। *महाभारत* में आभीरों और दरदों के साथ शूद्रों का उल्लेख है (भीष्म पर्व, 60, 17) वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार, "पाणिनि ने ऐषुकारिगण में शौद्रायणों का उल्लेख किया है। इस सूची में उन देशों की गिनती है जिनका नाम वहाँ के निवासी जनों के अनुसार पड़ता था।"—*(पाणिनि कालीन भारतवर्ष*, पृ. 65), ये लोग यूनानियों से लड़े थे, शास्त्र धारण करते थे।

मनुस्मृति में लिखा है : *न शूद्रराज्ये निवसेत्*—ब्राह्मण शूद्र राज्य में निवास न करें (4.61) शूद्र राजा भी होते थे, इसीलिए सावधान किया, उनके राज्य में न रहना। इस ग्रंथ में यह भी लिखा है—*न नृत्येदथवा गायेत् न वादित्राणि वादयेत्*—द्विज नाचे नहीं, गाये नहीं, बाजे बजाये नहीं (4.64) यह पुरोहितों की जड़ संस्कृति है। लोक संस्कृति में शिव नाचते हैं, डमरू बजाते हैं; कृष्ण नाचते हैं, बाँसुरी बजाते हैं; वाणी की देवी सरस्वती वीणा बजाती हैं, घुमन्तू मुनि नारद वीणा बजाते हैं। नारद कथावाचक भी रहे होंगे क्योंकि वह देवों को महाभारत सुनाते हैं (आदि पर्व 1.107) बालकाण्ड के आरंभ में पहले वही वाल्मीकि को रामकथा सुनाते हैं। रोचक तथ्य यह है कि *नाट्यशास्त्र* में नारद और गंधर्वों को गाने के लिए नियुक्त किया गया है (1.51)

महाभारत की तरह *नाट्यशास्त्र* भी इतिहास है (1.14) मुनियों ने भरत से पूछा था—यह नाट्य वेद कैसे उत्पन्न हुआ? भरत ने *नाट्यशास्त्र* की उत्पत्ति का इतिहास तो बताया ही, उससे भी अधिक रोचक उन्होंने नाटक की उत्पत्ति का इतिहास भी बताया। नाटक का पाठ्य अंश ऋग्वेद से, गीत अंश *सामवेद* से, अभिनय *यजुर्वेद* से, रस *अथर्ववेद* से ग्रहण किया (1.17) पाठ्य, गीत, अभिनय, तीनों का सीधा संबंध नाटक से है। इसके साथ इनका विवेचन शास्त्र में हो सकता है। परंतु नाटक पहले है, शास्त्र उसके बाद। ब्रह्मा ने भरत से कहा—इन्द्र का ध्वज महोत्सव चल रहा है, इसी में नाट्य वेद का प्रयोग करो (1.54-55) असुरों पर देवों की विजय के उपलक्ष्य में यह उत्सव मनाया गया। भरत ने नान्दी पाठ किया। यह पाठ शास्त्र में नहीं, नाटक में था। भरत कहते हैं, "इस नान्दी के पश्चात् देवताओं द्वारा दैत्यों पर विजय प्राप्त करने का मैंने ऐसा अभिनय प्रस्तुत करना आरंभ किया जो क्रोधपूर्ण वचनों, भगदड़ आदि कार्यों तथा मारकाट और युद्धार्थ किये गए आह्वानों से युक्त था। इस प्रदर्शन को देखकर ब्रह्मा जी संतुष्ट हो गए।"

(1.57-58) भरत ने अभिनय किया, इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता।

'भरत' का एक अर्थ अभिनेता है। सौ भरतपुत्र नाट्यकला की शिक्षा प्राप्त करते हैं। ये सब अभिनेता हैं। अभिनेता और गायक के लिए; 'कुशीलव' शब्द का व्यवहार भी *नाट्यशास्त्र* में है— "जो पुरुष अनेक वाद्यों के वादन में निपुण हो तथा वाद्य संगीत की गहरी जानकारी रखते हुए स्वयं उनके अनेक प्रयोगों को नाट्य पर लागू करता हो तो अपने कौशल, निखरे हुए ज्ञान तथा उत्तेजना-हीनता (गंभीरता) के कारण उसे कुशीलव कहते हैं। (35.106) *वाल्मीकि रामायण* (बालकाण्ड) में *मुनिवेषौ कुशीलवौ* (4.4) *कुशीलवौ तु धर्मज्ञौ...भ्रातरौ स्वर-संपन्नौ* (4.5) मुनिवेषधारी, स्वर-संपन्न दोनों कुशीलव भाइयों ने *पौलत्स्यवध* काव्य, *तंत्रीलय समन्वितं* (4.7., 4.8) गाया। मुनियों ने *गायन्तौ तौ कुशीलवौ* (4.17) काव्य गाने वाले उन कुशीलवों की प्रशंसा की।

अभिनेता और गायक के लिए *नाट्यशास्त्र* में 'नट' शब्द का व्यवहार भी हुआ है– "चारों प्रकार के संगीत विधान को लागू करते हुए तथा शास्त्र के आशय या सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए जो किसी रूपक को अपने स्वयं के विचार या अनुभवादि के साथ मंच पर प्रस्तुत करने में सक्षम हो तो उसे नट समझना चाहिए। (35.100) नट और नाट्य का संबंध स्पष्ट है–*नाट्यशास्त्र* में भरतपुत्रों अर्थात् नटों के नाम दिये हुए हैं–शांडिल्य, वात्स्य, कोहल, दन्तिल आदि को भरत ने नाट्यकला में प्रशिक्षित किया। (1.26) यह सूचना अभूतपूर्व है। यूनान में भी नाटक खेले जाते थे। वहाँ के किसी प्राचीन अभिनेता का नाम ज्ञात नहीं। पहले स्त्रियाँ अभिनय न करती थीं। भरत की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने अप्सराओं को रचा "और उन्हें अभिनय के लिए मुझे प्रदान किया।" (1.47) मंजुकेशी सुलोचना, सौदामिनी, देवसेना आदि प्राचीन भारत की अभिनेत्रियाँ थीं।

समाज में कुछ लोगों को नाट्यकला का विकास पसंद नहीं था। *नाट्यशास्त्र* के पहले अध्याय में विघ्नों का वर्णन विस्तार से किया गया है। ये विघ्न अमूर्त नहीं थे। उनके विरोध ने ऐसा रूप धारण किया कि भरत को लगा, ये मुझे मार डालेंगे। *त्रासं सञ्जनयन्ति स्म विघ्नाः मद्वधबुद्धयः* (1.76)। "वे विघ्न मेरा वध करने का निश्चय करके फिर त्रास उत्पन्न करने लगे।" स्मरण करें, *न नृत्येदथवा गायेत्—विघ्नों* का मूर्तरूप स्पष्ट हो जायेगा। भरत ने तो नाटक को *सर्वशिल्प प्रवर्तक* (1.15) बना दिया था। नृत्य संगीत समन्वित होने के साथ नाटक *लोकवृत्तानुकरण* (1.112) भी था। धनीजनों के मनोरंजन के अतिरिक्त *वह दुःखार्तानां श्रमार्तानां*—दुखियों और श्रम से थके हुए लोगों को विश्रान्ति देने वाला था (1.115) लोक संस्कृति का भरोसा करके भरत ने नाट्यकला का विकास किया। नाट्यमंडली में नाट्यकार के साथ नट, मालाकार, रजक, चित्रकार आदि होते थे। (35.89-90) इन्हीं में भरत भी हैं। "क्योंकि वह अकेला ही किसी नाट्य प्रयोग का मुख्य रूप से अपनी विभिन्न भूमिकाओं के अभिनयों के द्वारा, अनेक वाद्य वादनों के द्वारा तथा अनेक सहायकों के सहकार से निर्वाह या वहनकर्ता होता है, अतः इसे भरत कहा जाता है" (35.91)।

मनुस्मृति में नटों की जघन्य राजसी गति कही गयी है "झल्ल, मल्ल, नट (रंगमंच पर अभिनय कर जीविका करनेवाले) शस्त्रजीवी (सिपाही, सैनिक आदि) जुआरी तथा मद्यपी पुरुष—ये जघन्य (हीन) राजसी जातियाँ हैं। (12.45) हीनता के इस आरोप का उत्तर भवभूति ने यह कहकर दिया कि उन्होंने *निसर्ग सौहृदेन भरतेषु*, भरतों अर्थात् नटों से अपनी सहज मैत्री के कारण उन्हें *मालती माधव* नाटक खेलने को दिया।

शूद्रों और नटों के प्रति स्मृतिकार चाहे जितनी घृणा प्रदर्शित करें, भारतीय साहित्य की प्रशस्त धारा पुरोहितों की संकीर्णता के विरोध में प्रवाहित हुई है।

अत्यंत प्राचीनकाल से इस भारत देश में विभिन्न धर्मों के अनुयायी, विभिन्न भाषाएँ बोलनेवाले लोग रहते आये हैं। देश में एक ही धर्म के माननेवाले हों, एक ही भाषा बोलनेवाले हों, यह मान्यता हमारे कवियों की नहीं थी। *अथर्ववेद* के प्रसिद्ध पृथिवी सूक्त में कहा गया है: *जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं*–यह पृथिवी अनेक भाषाएँ बोलनेवाले जनों को धारण करती है। *नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्*–विभिन्न धर्मों के माननेवालों को ऐसे धारण करती है जैसे वे एक ही घर के रहनेवाले हों (12.145) जो क्रूर कर्म करते थे वे म्लेच्छ कहलाते थे। *म्लेच्छाः क्रूराः* और *दारुणा म्लेच्छजातयः* (भीष्म पर्व, 10.65) भारत के उत्तरी भाग में ये भी रहते थे।

भारत का बहुजातीय, बहुजनपदीय भव्य रूप *महाभारत* के भीष्म पर्व में प्रस्तुत किया गया है। एक ओर *दरदाः कश्मीरा हैः* (9.69) दूसरी ओर *द्रविडाः केरलाः कर्णाटकाः* (9.58-59)। हमारे राष्ट्रगीत पंजाब सिन्धु गुजरात मराठा द्राविड़ उत्कल बंग में भारत के इसी बहुजातीय स्वरूप की वंदना की गयी है। भारतीय भाषाओं और उनमें रचे जाने वाले साहित्य की एक सहस्राब्दी समाप्त होने को है। इस अवधि में देश पर अनेक आक्रमण हुए। इनमें सबसे शक्तिशाली तुर्क आक्रमण था। जहाँ अब तुर्की राष्ट्र है, वहाँ पहले यूनानी रहते थे। उस भूखंड का जातीय स्वरूप ही बदल गया। ये तुर्क दक्षिण यूरोप के देशों में घुसते चले गये। साइप्रस द्वीप में यूनानी और तुर्क दो विरोधी जातियों के रूप में एक दूसरे के सामने हैं, किन्तु भारत में तुर्क जातीयता विलीन हो गयी। सिंधी, हिंदी, पंजाबी, कश्मीरी–यहाँ की जातियों में तुर्क घुलमिल गये। अनेक प्रदेशों में इस्लाम का प्रसार हुआ। बहुत-से मुसलमान कवियों ने भारतीय भाषाओं में काव्य रचा। ये कवि जातीय संस्कृतियों के निर्माता थे। शाह अब्दुल लतीफ़ सिंधी संस्कृति के, वारिस शाह, बुल्लेशाह पंजाबी संस्कृति के, मलिक मुहम्मद जायसी हिन्दी संस्कृति के प्रतिनिधि थे। फिर अंग्रेज़ों ने भारत पर अधिकार किया। उन्होंने भरसक सांप्रदायिक संकीर्णता के प्रसार द्वारा जातीय संस्कृतियों को नष्ट करने का प्रयास किया परंतु बंगाल में ईसाई कवि माइकेल मधुसूदन दत्त ने *मेघनाद वध* काव्य लिखा। मुसलमान कवि नजरुल इस्लाम ने क्रांतिकारी गीत लिखे और हिन्दू कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने ऐसा काव्य रचा कि अधिकांश कट्टर हिन्दू उनका विरोध करते रहे। बीसवीं सदी सुब्रह्मण्य भारती, प्रेमचंद और निराला जैसे साहित्यकारों के कृतित्व की शताब्दी है। अगली शताब्दी में इस परंपरा को विकसित और समृद्ध करना है।

साहित्य अकादेमी ने विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य के इतिहास पर, इन भाषाओं के साहित्यकारों पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इनसे मैंने लाभ उठाया है। इसके लिए मैं अकादेमी को धन्यवाद देता हूँ। साहित्यिक विषयों के अतिरिक्त, इतिहास और समाजशास्त्र से संबद्ध विषयों पर अकादेमी ने संगोष्ठियाँ आयोजित की हैं। यह कार्य स्वागत योग्य है। बृहत्तर परिप्रेक्ष्य में देखने पर ही भाषाओं में रचे हुए साहित्य का समवाय है, यह अकादेमी के प्रकाशनों से सिद्ध होता है। इन भाषाओं के अतिरिक्त कोई ऐसी भारतीय भाषा नहीं है जिसमें रचे हुए साहित्य को हम भारतीय कहें। अनेक भाषाओं में रचे हुए साहित्य में जो सामान्य विशेषताएँ हैं, उन्हीं को हम भारतीय साहित्य की विशेषताएँ मानते हैं। भाषा की उन्नति उसके बोलनेवालों की उन्नति पर निर्भर है। यदि किसी भाषा के बोलनेवाले आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से पिछड़े हुए हों तो उस भाषा का साहित्य पूरी शक्ति से प्रगति नहीं कर सकता।

अंग्रेज़ी राज क़ायम होने से पहले भाषावार प्रदेश कहीं एकताबद्ध थे और कहीं नहीं थे परन्तु आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के कारण जातीय चेतना का प्रसार इन प्रदेशों में हो रहा था। यह बात प्राचीन तमिष़ साहित्य और भक्तिकालीन मराठी साहित्य में प्रतिबिंबित होती है। अंग्रेज़ी राज क़ायम

होने से पहले से सामन्त-विरोधी अखिल भारतीय नवजागरण दिखाई देता है, उसकी बहुत बड़ी विशेषता संस्कृत और अरबी-फ़ारसी से अलग हटकर भाषा प्रेम की अभिव्यक्ति है। इन भाषाओं का, और इन्हें बोलनेवाली जातियों का निर्माण अंग्रेज़ी राज में नहीं हुआ। उनका निर्माण इस राज से पहले हो चुका था। अंग्रेज़ी राज क़ायम होने पर साम्राज्यवाद से लड़ते हुए नई शक्ति से इन भाषाओं का और जातीय चेतना का विकास हुआ। अंग्रेज़ी भाषा की प्रगतिशील परम्परा से भारतीय साहित्यकारों ने कुछ बातें सीखीं परन्तु जहाँ तक अंग्रेज़ शासकों का सम्बन्ध है, उन्होंने अपने राज में जातीय चेतना के प्रसार को अवरुद्ध करने का भरसक प्रयत्न किया। इस प्रयत्न का एक रूप यह था कि वे जातीय प्रदेशों को विभाजित करते थे अथवा अनेक जातीय प्रदेशों को किसी एक महाप्रान्त में ठूँस देते थे। मुंबई और मद्रास के महाप्रान्त इसी उद्देश्य से बनाये गये थे। मुंबई महाप्रान्त की धारासभा में जब बहुत ही सीमित मताधिकार के आधार पर लोग चुने जाते थे, तब भी वहाँ के सदस्यों ने अपने अलग प्रान्त बनाने की माँग उपस्थित की थी। जातीय चेतना के प्रसार को अवरुद्ध करने के लिए जातीय प्रदेश को विघटित करना होता है। इसी उद्देश्य से 1905 में कर्ज़न ने बंगाल का विभाजन किया था। उस विभाजन का तीव्र विरोध साहित्यकारों ने किया। उनमें बाङ्ला के मराठी-भाषी लेखक सखाराम गणेश देउस्कर सबसे आगे थे। बंगाल के विभाजन का विरोध बंगालियों ने किया। बंगाल के बाहर अन्य प्रदेश के लोगों ने किया। इससे राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ हुई और स्वाधीनता आन्दोलन शक्तिशाली बना। स्वाधीनता आन्दोलन के उभार के साथ जातीय चेतना और पुष्ट हुई। फ़रवरी 1920 में गाँधी जी ने उड़ीसा के कुछ नेताओं का एक परिपत्र प्रकाशित किया जिसमें कहा गया था—"उड़िया लोग चार प्रशासनों के अधीन कर दिये गये हैं – बिहार, मद्रास, बंगाल और मध्यप्रान्त। वे हर जगह अल्पसंख्यक हैं। इस हालत में एक स्वतन्त्र इकाई के रूप में उनका विकास असम्भव हो गया है। भारत की प्रगति में उसके किसी भी हिस्से की प्रगति की अवगणना नहीं की जा सकती। नया भारत राष्ट्र एक प्राचीन जाति की राख पर खड़ा नहीं किया जा सकता।" गाँधी जी ने अपनी टिप्पणी में लिखा – "यह शानदार जाति यदि बिना किसी उचित कारण के चार भागों में बाँट दी जाती है तो वह कभी स्वाभाविक प्रगति नहीं कर सकती और प्रगति करने का हक़ तो उसे भी है ही।" (*संपूर्ण गांधी वाङ्मय* 17/41)।

दिसम्बर 1920 में गाँधी जी के निर्देश से कांग्रेस ने नागपुर अधिवेशन में नया संविधान स्वीकार किया। इसमें कांग्रेस कमेटियाँ भाषावार प्रान्तों के आधार पर चुनी जातीं। अंग्रेज़ों के महाप्रान्त मद्रास की सीमाओं की चिन्ता न करके गाँधी जी ने तमिष़, तेलुगु, कन्नड और मलयाळम् चारों भाषाओं के हिसाब से चार प्रान्तों की कल्पना की। गाँधी जी ने हिन्दुस्तानी के लिए छह प्रान्त निर्धारित किये – संयुक्त प्रान्त, सीमा प्रदेश, दिल्ली, अजमेर, मारवाड़ तथा राजपूताना, मध्य प्रदेश और बिहार। इनमें सीमा प्रदेश छोड़ दें तो बाक़ी पाँच प्रान्त बचते हैं जिनकी भाषा हिन्दी या हिन्दुस्तानी है। स्वाधीन भारत में सात राज्य हैं जहाँ हिन्दी राज्यभाषा है – बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश। इन राज्यों का एकीकरण अभी शेष है। इन सात हिन्दीभाषी राज्यों की एकता के बिना हिन्दी भाषा और साहित्य का भरपूर विकास असम्भव है।

अंग्रेज़ों ने बंगाल का विभाजन किया। उसका ऐसा व्यापक और तीव्र विरोध हुआ कि उन्हें विभाजन निरस्त करना पड़ा पर उनके पास एक अस्त्र और था। उन्होंने सम्प्रदायवाद को बढ़ावा दिया और जो बात 1911 में न हो सकी, वह 1947 में हो गई। बंगाल विभाजित हुआ। सौभाग्य से बंगाल में हिन्दी उर्दू जैसा विभाजन नहीं है। दोनों बंगालों में एक ही साहित्यिक भाषा का व्यवहार होता है। बाङ्ला भाषा की पूर्ण उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि दोनों बंगालों के साहित्यकार मिलकर प्रयत्न करें। इसी तरह पंजाब दो हिस्सों में बँटा हुआ है और यहाँ दो से अधिक धर्मों के अनुयायी हैं। अंग्रेज़ी राज क़ायम होने से पहले पंजाबी भाषा में विपुल साहित्य रचा गया था परन्तु अंग्रेज़ी राज क़ायम होने के बाद बहुत-से पंजाबी लेखक पंजाबी छोड़कर अंग्रेज़ी, उर्दू या हिन्दी में लिखने लगे। यदि दोनों पंजाबों के हिन्दू-मुसलमान-सिख लेखक मिलकर काम करें तो कश्मीर-समेत भारत और पाकिस्तान के सम्बन्धों की बहुत-सी समस्याएँ हल की जा सकती हैं।

स्वाधीनता आन्दोलन में फूट डालने के लिए अंग्रेज़ों ने द्विज और शूद्र के भेद से भी पूरी तरह लाभ उठाया। कुछ प्रदेशों में जातीय साहित्य से अलग हटकर दलित साहित्य रचने का रुझान दिखाई देता है। किसी भी प्रदेश के दलित लेखक हों, वे उस प्रदेश की जातीय भाषा छोड़कर अपना साहित्य नहीं रच सकते। डेढ़ सौ साल पहले मार्क्स एंगेल्स ने कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र में कहा था – जो सर्वहारा हैं वे अपने पुनर्जीवन के साथ पूरी जाति को पुनर्जीवित करते हैं। इसी से समझना चाहिए कि जो सम्पत्तिहीन हैं, दलित हैं, उन्हें क्रान्तिकारी मार्ग पर सबसे आगे चलना चाहिए और अपने साथ पूरी जाति का उद्धार करना चाहिए।

मई 1917 में गाँधी जी ने साकलचंद्र शाह को लिखा था – "हम गुजराती भाषा के माध्यम से मानसिक शक्ति का विकास करना चाहते हैं।" (*संपूर्ण गाँधी वाङ्मय,* 17/432)। प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर उच्चतम शिक्षा तक शिक्षा का माध्यम जातीय भाषा होनी चाहिए, तभी शिक्षित जनों का भरपूर मानसिक विकास हो सकता है। शिक्षा-केन्द्रों से बाहर आर्थिक जीवन में भारतीय भाषाओं के ऊपर अंग्रेज़ी का स्थान है। बड़े व्यवसाय की भाषा अंग्रेज़ी है, बड़े-बड़े बैंकों का कारोबार अंग्रेज़ी में होता है। हमारे राष्ट्रीय दैनिक अंग्रेज़ी में निकलते हैं, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भारी वेतन देकर होनहार युवा पीढ़ी को आकर्षित करती हैं। अब हमारे यहाँ विभिन्न प्रदेशों में एक ऐसा भद्र लोक निर्मित हो रहा है जिसकी घरेलू भाषा अंग्रेज़ी है। हमारे देश में तमिष़ जैसी भाषाएँ बोली जाती हैं जिनमें उच्च कोटि के साहित्य का निर्माण तब हुआ था, जब ऐंगल और सैक्सन क़बीले जर्मनी से इंग्लैंड पहुँचे न थे और अंग्रेज़ी भाषा का जन्म न हुआ था। गाँधी जी निरन्तर इस बात का प्रचार करते रहे कि प्रदेश का काम वहाँ की भाषा में हो और केन्द्रीय काम-काज हिन्दी में हो। साहित्य अकादेमी का भी काफ़ी काम अंग्रेज़ी में होता है। इस स्थिति में अकादेमी के भूतपूर्व सचिव इन्द्रनाथ चौधुरी ने फ़रवरी 1994 में और वर्तमान सचिव प्रो. के. सच्चिदानन्दन ने मार्च 1999 में मुझे हिन्दी में पत्र लिखे – इसके लिए इन महानुभावों का साधुवाद है।

मेरा जन्म अवध के उस भाग में हुआ था जिसे बैसवाड़ा कहते हैं। इस क्षेत्र से प्रताप नारायण मिश्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', नन्ददुलारे वाजपेयी, शिवमंगल सिंह 'सुमन' जैसे लेखक संबद्ध रहे हैं। साहित्य अकादेमी ने जो महत्तर सदस्यता प्रदान करके मुझे सम्मानित किया है, वह इस क्षेत्र की साहित्यिक परम्परा का भी सम्मान है। इस सम्मान के लिए मैं एक बार फिर साहित्य अकादेमी के सभी संबद्ध व्यक्तियों को हृदय से धन्यवाद करता हूँ।